Research Dynamics
978-81-954010-7-9

प्राचीन भारत में गुरु-शिष्य सम्बन्ध एवं शिष्यत्व

डॉ0 रागिनी राय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं
पुरातत्व विभाग,
ईश्वर शरण पी0जी0कॉलेज,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज,उ0प्र0, भारत

सारांश

विद्या अथवा शिक्षा के दो केन्द्र बिन्दु थे-अध्यापक तथा विद्यार्थी। एक से विद्या मिलती थी और दूसरे को विद्या ग्रहण करनी होती थी। शिक्षा का समस्त तानाबाना इन्हीं दोनों से सम्बन्धित था। स्वाभाविक है कि विद्या प्रदान करने वाला गुरुतर था। उसको देवता सदृश आदर, गरिमा और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। विद्यारम्भ के लिये उपनयन संस्कार के पश्चात् ही गुरु-गृह में शिक्षा ग्रहण करने का प्रावधान था। यह प्रथम अवसर होता था, जबकि बालक परिवार से निकलकर गुरु के पास जाता था। परिवार को भी प्रायः 'कुल' कहा जाता था। 'कुल' शब्द अत्यन्त सार्थक और सारगर्भित था। शिष्य अपने माता-पिता के कुल से आचार्य-कुल में जाकर आचार्य में पितृ-बुद्धि और आचार्य पत्नी में मातृ-बुद्धि की भावना करता तथा पारिवारिक वातावरण का अनुभव करता था।

प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति का प्रधान आधार शिक्षक था। शिक्षक के लिये प्रचलित नाम थे- गुरु, आचार्य, उपाध्याय। गुरु का शाब्दिक अर्थ 'उच्चतर' अथवा 'बड़ा' है। याज्ञवल्क्य के अनुसार वेदों की शिक्षा देने वाला गुरु है।1 ऋग्वेद में गुरु को अग्नि और इन्द्र देवताओं के रूप में 'विश्ववेदा' (सर्वज्ञ) 'सत्यमन्या' (सत्य जानने वाला), 'विश्वानि वयुनानि विद्वान' (विभिन्न विद्याओं का पारंगत) कहा गया है। मनु ने कल्प और रहस्यों के साथ वेदों की शिक्षा देने वाले

को आचार्य कहा है। गौतम, विष्णु और वशिष्ठ ने भी लगभग ऐसा कहा है।2 मनु और गौतम ने आचार्य को 'श्रेष्ठोगुरुणामे' कहा है। 'उपाध्याय' वह था जो वेद के केवल एक भाग को पढ़ाता था। अध्यापन अथवा शिक्षण मौखिक ही होता था। ऋग्वेद में कहा गया है कि पढ़ने वाला गुरु की बातें उसी प्रकार दुहराता है जिस प्रकार एक मेंढक टर्राने में दूसरे मेंढक की वाणी पकड़ता है।3 गुरु की स्थिति की बड़ी महत्ता दी गयी थी। पाठ्यग्रंथ बहुत ही कम तथा अमूल्य होते थे अतः वृहत विद्यार्जन के लिये गुरु बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। क्योंकि अध्यापन मौखिक था, और विद्यार्थी गुरु के पास ही रहता था, अतः गुरु का पद स्वभावतः उच्च एवं महान् हो गया था। छन्दोग्योपनिषद् तथा श्वेताश्वरोपनिषद् में गुरु को ईश्वर के पद पर रखा गया है और परम् श्रद्धास्पद माना है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में लिखा है- "शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को भगवान् की भाँति माने।"4 मनु एवं अन्य स्मृतियों में आचार्य की महत्ता के विषय में कुछ मतान्तर हैं। मनु के अनुसार जनक और गुरु दोनों पिता हैं, किन्तु वह जनक (आचार्य), जो पूत को वेद का ज्ञान देता है, उस जनक (पिता) से महत्तर है, जो केवल शारीरिक जन्म देता है, क्योंकि आध्यात्मिक विद्या में जो जन्म होता है वह ब्राह्मण के लिए इहलोक तथा परलोक दोनों में अक्षुण्ण एवं अक्षय होता है।

प्राचीन भारत में गुरु और शिष्य का आदर्शात्मक सम्बन्ध था। दोनों का सम्बन्ध पिता-पुत्र सा था।5 यह कहा गया था कि शिष्य का यह कत्र्तव्य है कि वह अपने आचार्य को पितृतुल्य और मातृतुल्य माने तथा किसी भी अवस्था में उसके प्रति द्रोह न करे।6 आचार्य की देवतुल्य और उच्चस्थ प्रतिष्ठा का सन्दर्भ महाभारत में भी मिलता है।7 मनुस्मृति में यह उल्लिखित है कि विद्या ने ब्राह्मण के पास आकर कहा कि मैं तुम्हारा कोष हूँ, मेरी रक्षा करो, मेरी निन्दा करने वालों के लिए मुझे मत दो, इससे मैं अत्यन्त वीर्यवती होऊँगी। जिसे तुम पवित्र, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी समझो, उसे मुझे पढ़ाओ। मनु के अनुसार द्विज बालक के दो जन्म होते हैं। इसी से उसे 'द्विज' कहा जाता है। पहला जन्म माता के गर्भ से होता है और दूसरा उपनयन संस्कार से। द्वितीय जन्म ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिए होता है और इस द्वितीय जन्म में उसकी माता गायत्री (मन्त्र) होती है और पिता आचार्य होता है।8

कालिदास ने गुरु-शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध को 'गुरुप्रियम' कहा है।9 दशकुमारचरित् में गुरु की प्रशंसा की गई है तथा शिष्य को उसका अनुवर्ती

होने का संकेत किया गया है। ईत्सिंग ने लिखा है, ”शिष्य गुरु के पास रात्रि के पहले और अन्तिम पहर में जाता है, उसके शरीर की मालिश करता है, वस्त्र आदि संभालकर रखता है, यदा-कदा गुरु के आवास और आँगन में झाडू लगाता है। फिर जल छानकर उसे पीने के लिए देता है। अपने से बड़े के प्रति आदर इसी प्रकार प्रदर्शित किया जाता है।“ पूर्वमध्ययुगीन साहित्य से भी यह विदित होता है कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ था। शिष्य का यह कत्र्तव्य था कि वह गुरु की दिन-रात सेवा करे और गुरु का यह कत्र्तव्य था कि वह स्नेहपूर्वक शिष्य से पुत्रवत् प्रेम करे तथा उसकी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान करे। किसी भी अध्यापक को यह उचित नहीं था कि वह विद्यार्थी को अपेक्षित ज्ञान से वंचित रखता, बल्कि वह शिष्य को अनेकानेक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देता था।10

शिष्य अथवा विद्यार्थी के लिये विद्यार्जन के प्रति निष्ठावान तथा जिज्ञासु होना आवश्यक था। गुरु उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति और कर्तव्य- बुद्धि की जानकारी रखता था। प्रतिभावान और सुयोग्य शिष्य को चुनना, गुरु की कुशलता का द्योतक था।11 यह गुरु की विशेष कुशलता होती थी जब वह मन्दबुद्धि छात्र के मस्तिष्क में ज्ञान का मन्त्र फूंक सकने में समर्थ होता था। आचार्य अपने शिष्य के विषय में जब पूरी जानकारी प्राप्त कर लेता था और सन्तुष्ट हो जाता था उसे अपना शिष्य स्वीकार करके शिक्षा प्रदान करता था। शिष्यों के गुणों के विषय में निरुक्त द्वारा उद्धृत विद्यासूक्त में आता है कि जो शिष्य विद्या को घृणा की दृष्टि से देखे, कुटिल एवं असंयमी हो, ऐसे शिष्य को विद्या-ज्ञान नहीं देना चाहिए, किन्तु जो पवित्र, ध्यानमग्न, बुद्धिमान्, ब्रह्मचारी, गुरु के प्रति सत्यवर्ती हो तथा जो अपनी विद्या की रक्षा धन-कोष की भाँति करे उसे शिक्षा देनी चाहिए।12 मनु के अनुसार 10 प्रकार के व्यक्ति शिक्षण प्राप्त करने योग्य हैं- गुरु-पुत्र, गुरुसेवी शिष्य, जो बदले में ज्ञान दे सके, धर्मज्ञानी या जो मन-देह से पवित्र हो, सत्यवादी, जो अध्ययन करने एवं धारण करने में समर्थ हो, जो शिक्षण के लिए धन दे सके, जो व्यवस्थित मन का हो और जो निकट-सम्बन्धी हो।13 याज्ञवल्क्य ने इन योग्यताओं के साथ कुछ और गुण भी जोड़े हैं, यथा कृतज्ञ, गुरु से घृणा न करने वाला या गुरु के प्रति असत्य न होने वाला, स्वस्थ तथा व्यर्थ का छिद्रान्वेषण न करने वाला।14 आपस्तम्बधर्मसूत्र के अनुसार ब्रह्मचारी को सदा अपने गुरु पर आश्रित एवं उनके नियन्त्रण के भीतर रहना चाहिए, उसे गुरु

को छोड़ किसी अन्य के पास नहीं रहना चाहिए।15 गौतम के अनुसार शिष्य को असत्य भाषण नहीं करना चाहिए, प्रतिदिन स्नान करना चाहिए, सूर्य की ओर नहीं देखना चाहिए तथा मधु-सेवन, मांस, इत्र (गंध), पुष्प-सेवन, दिन-शयन, तेल-मर्दन, अंजन, यानयात्रा, उपानह (जूता आदि) पहनना, छाता लगाना, प्रेम-व्यवहार, क्रोध, लालच, मोह, व्यर्थ विवाद, वाद्ययन्त्र- वादन, गर्म जल में आनन्ददायक स्नान, बड़ी सावधानी से दाँत स्वच्छ करना, मन की उल्लासपूर्ण स्थिति, नाच, गान, दूसरों की भत्र्सना, भयावह स्नान, नारी को घूरना या युवा नारियों को छूना, जुआ, क्षुद्र पुरुष की सेवा (नीच कार्य करना), पशु-हनन, अश्लील बातचीत, आसव सेवन आदि से दूर रहना चाहिए।16 मनु के अनुसार उसे खाट या चैकी पर नहीं सोना चाहिए एवं पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। स्वप्नदोष हो जाने पर उसे स्नान करना चाहिए, सूर्य की पूजा करनी चाहिए तथा ”पुनर्मामः“ मन्त्र का तीन बार उच्चारण करना चाहिए।17 आपस्तम्बधर्मसूत्र के अनुसार विद्यार्थी को साधारण गर्म जल से अंग नहीं धोने चाहिए। यदि अंग गन्दे एवं अपवित्र हों तो उन्हें गुरु से छिपाकर गर्म जल से धो लेना चाहिए, विद्यार्थी को क्रीड़ापूर्वक स्नान नहीं करना चाहिए, बल्कि पानी में डण्डे के समान गतिहीन स्नान करना चाहिए, स्त्रियों से तभी बात करे जब कि अत्यावश्यक हो। विद्यार्थी को हँसना नहीं चाहिए, यदि वह अपने को रोक न सके तो उसे मुख को हाथों से बन्द करके हँसना चाहिए।18

गौतम एवं बौधायनधर्मसूत्र के अनुसार शिष्य को गुरु के साथ जाना चाहिए, उसे स्नान करने में सहायता देनी चाहिए, उसके शरीर को दबाना चाहिए और उसका उच्छिष्ट खाना चाहिए, उसे गुरु को प्रसन्न करने वाले कार्य करने चाहिए, गुरु के बुलाने पर पढ़ना चाहिए, उसे कपड़े के टुकड़े से अपना कण्ठ नहीं ढकना चाहिएण्, अपने पैरों को आगे कर गुरु के समीप नहीं बैठना चाहिए, अपने पाँव नहीं फैलाने चाहिए, जोर से गला नहीं स्वच्छ करना चाहिए, जोर से हँसना, जँभाई लेना, अँगुली चटकाना नहीं चाहिए, बुलाने पर तुरन्त आना चाहिए, भले ही बहुत दूर बैठा हो, गुरु से नीचे के आसन पर बैठना चाहिए, गुरु के सो जाने के उपरान्त सोना एवं उनके जगने के पहले जगना चाहिए। शिष्य को अपने गुरु की चाल-ढाल, वाणी एवं क्रियाओं की विदूषी नकल नहीं करनी चाहिए। मनु ने यह भी लिखा है कि शिष्य को अपने गुरु के विरोध में कहे जाते हुए शब्द नहीं सुनने चाहिए।

ऋग्वेद में कई शाखाओं वाले बच्चों के बारे में उल्लेख मिलते हैं। गौतम एवं मनु के अनुसार ब्रह्मचारी का सिर मुड़ा रहना चाहिए, या जटाबद्ध रहना चाहिए या शिखा बिना पूरा घुटा रहना चाहिए। जनमार्ग पर चलते समय शिक्षा खोलने की मनाही थी।

गुरुकुल में विद्यार्थी के साथ समानता का व्यवहार होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य कुलोत्पन्न द्विजाति बालक समान रूप से अपनी वर्ण-व्यवस्था के अन्तर को दूर रख कर अध्ययन करते थे। विद्यार्थियों के मध्य धनी और निर्धन की भावना के लिए भी स्थान नहीं था। सभी ब्रह्मचारियों को चाहे वे राजकुल में उत्पन्न हों अथवा अत्यन्त निर्धन कुल में उत्पन्न हों, समान रूप से अध्यवसायी होना पड़ता था। शिक्षार्थी को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य रूप से करना पड़ता था। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिकारों के अनुसार ब्रह्मचारियों को मधु, मांस आदि जिह्वा को अच्छे लगने वाले पदार्थों का परित्याग करना पड़ता था। इन्द्रिय-निग्रह के लिए ब्रह्मचारी अश्लीलता आदि से सर्वथा दूर रहता था। मृदु स्वभाव तथा पर दुख-कातरता की अभिवृद्धि आदि के लिए उसे प्राणिवध से सर्वथा दूर रहकर अहिंसा व्रत का पालन करना पड़ता था। ब्रह्मचारी की वेशभूषा मृगचर्म, यज्ञोपवीत मेखला (कमर में बाँधी जाने वाली रस्सी) तथा पलाश (वृक्ष विशेष) दण्ड मात्र ही थी। उन्हें भावी जीवन में कष्टसहिष्णु बनने के लिए यह आवश्यक था कि प्रथमतः आश्रम में रहकर वे हर प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना सीख लें। भिक्षावृत्ति के लिए यह आदेश था कि वे अपने सम्बन्धियों, गुरु के कुल में तथा अपनी जाति वालों के यहाँ न माँगें।19 यह विधान विद्यार्थी को कष्टसहिष्णु बनाने के लिए ही था। उसे एक ही घर से पूर्ण भिक्षा ग्रहण करने का भी निषेध था। भिक्षा भी अधिक मात्रा में लाकर संचित करने का निषेध था, उसे प्रतिदिन ही भिक्षा माँग कर लाना होता था। यदि वह भिक्षा नहीं माँगता था तो भोजन करने का निषेध था। ब्रह्मचारी के इस प्रकार के जीवन को देख कर किसी एक कवि की उक्ति "सुखार्थियांे (सुख की आकांक्षा रखने वाले) को विद्या कहाँ तथा विद्यार्थियों को सुख कहाँ", चरितार्थ होती हुई प्रतीत होती है।20

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।*
   उपनीय ददद्वेदमाचार्य स उदाहृत।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1।34.

2. मनुस्मृति-2/140; 'तदयस्मात च आचार्य।। 1/1/11 वेदानुवचनाच्च'- गौतम 1/1/12;
यूस्तूपनीय 'वृतादेशं कृत्वा वेदमध्यापहन्तमाचार्य विद्यात।'
विष्णु उपनीयतुयः कृत्स्नं वे; मध्यापवेत स आचार्यः, वशिष्ठ 1/24.
3. ऋग्वेद 7/10/3/5; अथर्ववेद 11/7/1; गोपथ ब्राह्मण 2/1, अथर्ववेद 11/7/3; आपस्तम्भ धर्मसूत्र 1/1/16-18; शतपथ ब्राह्मण 11/5/4/12; अथर्ववेद 11/7/6 एवं शतपथ ब्राह्मण 11/5/4/ 1/17/
4. छान्दोग्य उपनिषद 4/9,3 श्वेताश्वतरोपनिषद 6/23, आपस्तम्भधर्मसूत्र 1/2/6/13.
5. पुत्र मिवैनमभिकांक्षन।। आपस्तम्भ धर्मसूत्र 1/2/8/24.
6. 'त मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न दुह्येत्कतमस्ननाह। निरुक्त, 2/4.
7. महाभारत, उद्योगपर्व 44/6/20.
8. मनुस्मृति, 2/1114-12 तथा 2/169-170 ।
9. रघुवंश, 3/24।
10. कृत्यकल्पतरु, ब्रह्मचारी कांड, 199-201, 210-227, 240-43।
11. मालविकाग्निमित्रम, पृ0 19, तथा 2/9।
12. निरुक्त 2/4
13. मनुस्मृति 2/109 तथा 112
14. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/28
15. आपस्तम्बधर्मसूत्र, 1/1/2/19
16. गौतमधर्मसूत्र 2/13, 14, 18, 19, 22, 23, 25।
17. मनुस्मृति, 2/180, 181, 198
18. आपस्तम्बधर्मसूत्र 1/1/2/28-30
19. मनुस्मृति 2/184.
20. सुखार्थिनः कुतोविद्या। कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।